उत्तर : श्री लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' कृत 'कर्मवीर भरत' खण्डकाव्य में राम-वनगमन एवं दशरथ के निधन के पश्चात् भरत के ननिहाल से लौटने एवं चित्रकूट से राम की चरण-पादुकाएँ लेकर अयोध्या लौटने तक की कथा संक्षेप में वर्णित है। इसका सम्पूर्ण कथानक छह सर्गों में विभक्त है। इन समस्त सर्गों का क्रमशः कथासार इस प्रकार है—

प्रथम सर्ग- आगमन

भरत तथा शत्रुघ्न दोनों ननिहाल गए हुए थे। अयोध्या के दूत अकस्मात् वहाँ पहुँचे और उन्होंने भरत तथा शत्रुघ्न को सूचना दी कि दोनों राजकुमारों को गुरु वशिष्ठ ने तत्काल अयोध्या में बुलाया है। भरत ने दूतों से अपने माता-पिता, भाइयों आदि की कुशलता जाननी चाही, किन्तु दूत अपनी भावनाओं को दबाकर मौन ही रहे। दूत दशरथ-मरण तथा राम-वनगमन की बात को बड़ी चतुराई से छिपा गए। भरत तथा शत्रुघ्न अपने मामा की आज्ञा प्राप्तकर अयोध्या की ओर चल पड़े। मार्ग में उन्हें सब सूना-सा लगा। अयोध्या में प्रवेश करते समय तो उन्हें आश्चर्य भी हुआ; क्योंकि उनके आगमन पर न तो किसी प्रकार का उल्लास मनाया गया और न उनके स्वागत की कोई तैयारी दिखाई दी। राजमहल में सभी मौन होकर संकेतों में बातें करते हुए दिखाई दिए। चतुरबुद्धि भरत ने किसी अमंगल की कल्पना तो कर ली, किन्तु उन्हें वास्तविक घटना का बोध नहीं हो पाया। भरत सीधे दशरथ-भवन पहुँचे; किन्तु वहाँ का सूनापन देखकर उनका मन चिन्तित हो उठा। उन्होंने राजद्वार पर किसी द्वारपाल अथवा मन्त्री को भी नहीं देखा। अब भरत व्याकुल होकर अपनी माता कैकेयी के भवन की ओर चल पड़े।

द्वितीय सर्ग- राजभवन

कैकेयी अपने भवन में चुपचाप बैठी हुई थी। उसने भरत का मस्तक चूमकर उनका स्वागत किया। भरत ने अपनी माता से पिता दशरथ, भाई राम तथा लक्ष्मण आदि की कुशलता पूछी और उन सबकी अनुपस्थिति के विषय में प्रश्न किया। कैकेयी ने बड़े संयत स्वर में महाराज दशरथ की मृत्यु का संवाद भरत को सुनाया। इस दु:खद संवाद को भरत सहन नहीं कर पाए और मूर्च्छित होकर गिर पड़े। कैकेयी ने भरत को किसी प्रकार सँभाला और अत्यन्त धैर्य के साथ उनके सम्मुख अपने मन के भावों को इस प्रकार प्रकट किया—

"राजा का कर्त्तव्य है कि वह अपने शिक्षित-अशिक्षित, सुखी-दु:खी सभी प्रकार के नागरिकों की रक्षा करे। अयोध्यावासी तो सभी नागरिक हैं, परन्तु दूर जंगल में रहनेवाले वनवासी तो दीन, दु:खी, उदास तथा अरक्षित हैं। मैंने यही सोचकर कि इन भोले-भाले तथा असहाय वनवासियों के दु:ख को केवल राम ही दूर कर सकते हैं, राम को वन में भेजने की नीति अपनाई। मैंने महाराजा दशरथ का युद्धक्षेत्र में साथ दिया था। राम को वन में भेजने तथा भरत को राजगद्दी दिलाने में मेरे मन में तो लोक-कल्याण की भावना ही रही है—

"लोग भले ही मुझे स्वार्थरत नीच बताएँ,
भले क्रूरमाता कह मुझे कलंक लगाएँ।

पर मैंने जो किया उसी में सबका हित है,
जन-जीवन सुख हेतु व्यक्ति का त्याग उचित है।''

× × ×

''ममता तजकर मैंने पत्थर किया कलेजा।
जन सेवा के लिए राम को वन में भेजा।।''

किन्तु दु:ख है कि महाराजा दशरथ राम-वनगमन की बात सहन नहीं कर सके और उन्होंने मोहवश अपने प्राण त्याग दिए। राम के व्यक्तित्व को अधिक चमकाने के लिए ही मैंने इस प्रकार की नीति को अपनाया है। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि राम ने तो मेरी बात को सहर्ष स्वीकार करके वन की ओर प्रस्थान किया, परन्तु महाराजा दशरथ मोहवश स्वर्ग सिधार गए।''

माता कैकेयी के मुख से इस दु:खजनक वृत्तान्त को सुनकर भरत पुन: धरती पर गिर पड़े। कैकेयी ने साहस बटोरकर भरत को समझाया, परन्तु भरत कुपित होकर बोले—''क्या किसी रानी ने अपने पति को स्वर्ग तथा पुत्र को वन में भेजने का दुष्कृत्य किया है? अन्य माताएँ तो यही सोचेंगी कि इस षड्यन्त्र में भरत का ही हाथ है। मैं अन्य माताओं को अपना मुख कैसे दिखाऊँगा? राम की अनुपस्थिति में मैं अयोध्या की राजगद्दी को किस प्रकार सँभाल सकता हूँ?'' कैकेयी ने भरत को धैर्य बँधाते हुए कहा कि राम तो मुनि विश्वामित्र के साथ पहले भी वन में रहकर अपने साहस का परिचय दे चुके हैं तथा राम में इस प्रकार की योग्यता है कि वे वनवासियों के हृदय में चेतना जाग्रत कर सकते हैं। कैकेयी ने भरत को राजगद्दी सँभालने तथा शोक न करने के लिए कहा। राम के चरित्र की विशेषताओं का वर्णन करते हुए उसने भरत को अपने कर्त्तव्यपालन की शिक्षा दी। कैकेयी ने दृढ़ विश्वास के साथ कहा कि भले ही उसे स्वयं भरत अथवा कोई अन्य दोष दे, परन्तु उसने यह कार्य लोकहित की दृष्टि से किया है। भरत तथा शत्रुघ्न दोनों भाई कैकेयी की बात को सुनकर अत्यन्त दु:खी मन से माता कौशल्या की ओर चल पड़े। इस प्रकार कवि ने इस सर्ग में कैकेयी के परम्परागत कलंकित चरित्र को उज्ज्वल बनाकर उसे गौरव प्रदान करने का प्रयास किया है।

तृतीय सर्ग- कौशल्या सुमित्रा मिलन

भरत के आगमन की सूचना पाकर कौशल्या का हृदय अत्यधिक स्नेह से भर गया। अपने सम्मुख खड़े तथा चरणों में शीश झुकाए हुए भरत तथा शत्रुघ्न को कौशल्या ने आशीर्वाद दिया। भरत को छाती से लगाकर कौशल्या अत्यधिक विलाप करने लगीं। कौशल्या की दशा को देखकर भरत का हृदय फटने लगा। दशरथ-मरण तथा राम के वनगमन का कारण अपनी माता कैकेयी के वरदानों को मानकर भरत ने स्वयं को धिक्कारा। भरत ने कहा कि आज तो सभी यह कहेंगे कि भरत को राजगद्दी की लालसा अवश्य होगी। भरत की बात सुनकर माता कौशल्या ने उन्हें समझाते हुए कहा, "पुत्र! इस घटनाचक्र में न तुम्हारा कोई हाथ है और न कैकेयी का कोई दोष है। होनी तो होकर रहती है। मैं अपने भरत की पवित्रता और सत्यता को भली प्रकार जानती हूँ। तुम्हारे विरुद्ध यदि कोई कुछ कहेगा तो मैं उसकी जीभ खींच लूँगी।" कौशल्या ने भरत का उत्साह बढ़ाते हुए उसे कर्त्तव्यपालन की प्रेरणा दी। कौशल्या ने स्पष्ट रूप से कहा कि वीर तथा अन्त:करण को शुद्ध रखनेवाले साहसी पुरुष निन्दा पर कभी ध्यान नहीं दिया करते। जो निन्दा तथा अपयश के भय-जाल में उलझ जाते हैं, वे जीवन में कभी महान् कार्य नहीं कर पाते।

भरत के आगमन की सूचना मिलने पर सुमित्रा भी वहाँ दौड़ी हुई आई तथा दोनों पुत्रों को गले से लगाया। माता सुमित्रा के सम्मुख भी भरत ने स्वयं को अपराधी माना। उन्होंने कहा कि मेरी माता ने मुझको राजगद्दी का लोभी किस प्रकार जाना? उसने राम के स्थान पर मुझे ही वनवास क्यों नहीं दिलाया? सुमित्रा ने भी भरत को समझाया कि राम वन में जाकर राक्षसों का विनाश करने में सक्षम और शस्त्र-संचालन में अत्यन्त निपुण हैं। उन्होंने पहले ही विश्वामित्र से शस्त्रास्त्र की शिक्षा-दीक्षा प्राप्त कर ली है। सुमित्रा ने धैर्य के साथ कहा—"तुम्हारे दु:खी होने से तो उर्मिला, माण्डवी आदि भी दु:खी होंगी। तुम दु:ख को छोड़ो और कर्त्तव्य का पालन करो।"

"बिना कर्म के ज्ञान की प्राप्ति भी नहीं होती तथा आत्मबल के बिना व्यक्ति कभी पवित्र नहीं बन पाता।" इतना कहकर सुमित्रा ने दोनों पुत्रों को गले लगाकर मुनि वशिष्ठ के पास भेज दिया।

चतुर्थ सर्ग- आदर्श वरण

भरत तथा शत्रुघ्न मुनि वशिष्ठ के पास पहुँचे। कौशल्या तथा सुमित्रा के समान वशिष्ठ ने भी भरत को समझाया। पिता दशरथ के शव को देखकर तो भरत मूर्च्छित हो गए। चेतना लौटने पर मुनि वशिष्ठ ने उन्हें समझाया कि नाश और विकास, सुख और दु:ख, मृत्यु और जीवन साथ-साथ चलते हैं।

भरत ने अत्यन्त शोकाकुल अवस्था में दशरथ के शव का सरयू के किनारे पर दाह-संस्कार किया। इसके पश्चात् मुनि वशिष्ठ, सुमन्त तथा अन्य सभासदों ने भरत से राजगद्दी सँभालने के लिए कहा, परन्तु राम के होते हुए भरत राजगद्दी सँभालने की बात अस्वीकार करके अपनी वास्तविक कर्मवीरता का परिचय देते हैं। वे राम से मिलने का प्रस्ताव रखते हैं, जिसे वशिष्ठ, सुमन्त आदि सभी स्वीकार कर लेते हैं। भरत के साथ राम से मिलने शत्रुघ्न, कैकेयी तथा कौशल्या भी वन में जाने के लिए तैयार हो गईं। नगरवासी भी उनके साथ चलने का आग्रह करने लगे। अगले दिन प्रात: वशिष्ठ, सुमन्त, माता कौशल्या, कैकेयी तथा अनेक नगरवासी वन की ओर चले। भरत प्रारम्भ में पैदल ही चले, परन्तु कौशल्या के कहने पर वे रथ पर बैठ गए। दिनभर चलने के पश्चात् सभी ने तमसा नदी के किनारे पर विश्राम किया और फिर गुरु वशिष्ठ की आज्ञा लेकर गोमती नदी को पार कर आगे बढ़े।

पंचम सर्ग- वनगमन

इक्ष्वाकु पताका को रथ पर फहराती हुई देखकर निषादराज गुह को कुछ सन्देह होने लगा। उन्होंने समझा कि भरत ने पहले राम को वन में भिजवाया और अब वह राम से युद्ध करने आए हैं, परन्तु निषादों के एक वृद्ध द्वारा समझाने पर उन्हें सही ज्ञान हुआ। भरत को मुनि वशिष्ठ और माताओं के साथ आता देखकर निषादराज की शंका समाप्त हो गई। भरत के समीप पहुँचने पर तथा वशिष्ठजी की बातों से तो वह अत्यन्त गद्‌गद हो गए। भरत के अगाध स्नेह को देखकर तो वह और भी अधिक पुलकित हो उठे। निषादराज ने भी भरत के सम्मुख राम के प्रभाव का वर्णन किया। वह सभी को नाव में बैठाकर गंगा पार ले गए। चित्रकूट वन को समीप आते देखकर भरत तथा शत्रुघ्न दोनों भाई रथ से उतरकर पैदल ही चल पड़े।

षष्ठ सर्ग- राम भरत मिलन

एक निषाद ने राम के आश्रम में भरत के आगमन की सूचना दी। लक्ष्मण कुछ सशंकित हुए, परन्तु राम ने नंगे पैर दौड़कर भरत को गले से लगा लिया। भरत बेसुध-से होकर राम के चरणों से लिपट गए। शत्रुघ्न ने भी भाई राम से आशीर्वाद प्राप्त किया। राम ने अपनी माताओं के चरण स्पर्श किए और आशीर्वाद प्राप्त किया। इसके पश्चात् मुनि वशिष्ठ ने राम को दशरथ-मरण का सन्देश सुनाया, जिसे सुनकर

राम तथा लक्ष्मण दु:ख से अधीर हो उठे। यह देखकर वशिष्ठजी ने राम को समझाया। कुछ दिनों तक सभी लोग राम के आश्रम में आनन्दमग्न रहे। चित्रकूट आश्रम का प्राकृतिक वातावरण अत्यन्त मनोरम था।

यद्यपि राम भरत के मन की बात भली प्रकार समझ रहे थे, फिर भी भरत ने एक दिन अवसर मिलने पर राम से कहा—"भाई राम, अयोध्या का सिंहासन सूना पड़ा है, आप राजगद्दी सँभालें, मैं यहीं वन में रहूँगा।" कैकेयी भी राम से कहती हैं कि "इस सम्पूर्ण दु:खजनक नाटक के मूल में मेरा ही हाथ है। भरे-पूरे रघुवंश में मैंने ही कालिमा लगाई है। हे पुत्र राम! भरत जो कह रहा है, तुम उसे मान लो। हम सबका यही मत है कि तुम अयोध्या वापस चलो।" राम ने बड़ी सहानुभूति से भरत तथा कैकेयी को समझाते हुए कहा—"पिता स्वर्गलोक चले गए, माताएँ विधवा हो गईं। मैं राजा बनकर पितृ-वचन को किस प्रकार भंग करूँ? इससे तो राजवंश का आदर्श ही समाप्त हो जाएगा।" भरत बड़े भाई राम के आदर्श तथा अगाध स्नेह के सम्मुख नतमस्तक हो गए। अन्त में भरत ने आग्रह किया कि वे राम की चरण-पादुकाओं को लेकर जाएँगे और अयोध्या में चौदह वर्षों तक राम की चरण-पादुकाओं का ही राज्य होगा।

राम ने भरत को अनेक बातें समझाईं और उन्हें गले से लगाकर अपनी चरण-पादुकाएँ अर्पित कीं। भरत के साथ अन्य पुरवासी भी अयोध्या लौटे। भरत ने अयोध्या से बाहर नन्दीग्राम में एक पर्णकुटी बनवाई और स्वयं कुशा के आसन पर बैठे तथा राम की चरण-पादुकाओं को राज-सिंहासन पर सुशोभित किया। इस प्रकार भरत ने अपने चरित्र का आदर्श रूप प्रस्तुत किया।